Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-3* *Issue-5* *May 2026***

www.researchvidyapith.com **ISSN (Online): 3048-7331**

कठोपनिषद में उद्धृत प्रमुख मनोवैज्ञानिक संकल्पनाओं की शैक्षिक विवेचना

मनु गंगवार

शोधार्थी, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

प्रो0 प्रवीण कुमार तिवारी

आचार्य, शिक्षा विभाग (केंद्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Article Info: *(Recieved- 28/02/2026, Accept- 20/03/2026, Published- 10/05/2026)*
DOI- 10.70650/rvimj.2026v3i5001

भारतीय परम्परा में महर्षि पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार 1131 वैदिक शाखाओं के अनुरूप सिद्धान्ततः 1131 उपनिषदों की उपलब्धता रही होगी, परन्तु कालांतर में बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा शिक्षा केन्द्रों को नष्ट किए जाने और विद्याओं के अध्येता आचार्यों को भी नष्ट किए जाने के कारण उनमें से कई उपनिषद् लुप्त हो गए। वर्त्तमान में 108 प्रमुख उपनिषदों की चर्चा होती है। आदिगुरू शंकराचार्य जी ने तेरह उपनिषदों को प्रधानतम उपनिषद माना जिनमें से ग्यारह उपनिषदों पर उन्होंने भाष्य भी लिखा। ये ग्यारह उपनिषद् हैं– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक और छान्दोग्य। इनमें एक प्रमुख उपनिषद् के रूप में कठ उपनिषद कृष्ण यजुर्वेद का एक भाग है। इस उपनिषद में यमराज और नचिकेता अर्थात् गुरु–शिष्य के बीच एक गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक चर्चा का वर्णन किया गया है जो चिंतन करने पर मानव मानस में गहराई से उतरता है। यह संवाद आत्मज्ञान के बारे में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इस शोधपत्र का उद्देश्य कठोपनिषद में वर्णित तर्क और इन्द्रियों से परे सत्य को अन्वेषित करते हुए मनोवैज्ञानिक संकल्पनाओं की शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करना है। कठोपनिषद में विभिन्न मनोवैज्ञानिक संकल्पनाओं की चर्चा है जिनमें मन, बुद्धि, आत्मा, इन्द्रिय, स्वप्न, चेतना, सुख, शोक, श्रद्धा, वीतमन्यु, सुमना, भय, प्रीयमाण, धीर, तर्क, हर्ष, शरीर आदि प्रमुख हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में आत्मा, बुद्धि, मन, तथा इन्द्रियों की विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

कठोपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीय वल्ली के तीसरे मंत्र में आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि के अन्तर्सम्बन्धों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है–

आत्माॅंन् रथिनं विद्धि शरीरॅंरथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनरू प्रग्रहमेव च।। (कठोपनिषद 1/3/3)

इस मंत्र में रथ–रथी के रूपक द्वारा आत्मा को रथ का स्वामी, शरीर को रथ समझा गया है क्योंकि रथ में बंधे हुए अश्वरूप को इन्द्रियों अर्थात् लगाम से खींचा जाता है तथा बुद्धि को सारथी यानी चलाने वाला नेतृत्वकर्ता जो आत्मारूपी स्वामी के निर्देशन से चलता है व मन को लगाम अर्थात इन्द्रियरूपी अश्वों को मन के माध्यम से नियंत्रित करने वाला समझा गया है जिस प्रकार घोड़े लगाम से नियंत्रित होकर चलते हैं उसी प्रकार इन्द्रियाँ मन से नियंत्रित होकर ही अपने मार्ग में प्रवृत्त होती हैं।

यह रूपक आंतरिक मनोप्रक्रियाओं– आत्मा(स्वामी), बुद्धि (निर्णयकर्ता), मन (नियंत्रक), इन्द्रिय (भौतिक प्रेरक) को समझने के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।

कठोपनिषद में वर्णित प्रमुख मनोवैज्ञानिक संकल्पनाओं का स्वरुप एवं शैक्षिक विवेचना–

कठोपनिषद में वर्णित मंत्रों में उद्धृत मनोवैज्ञानिक संकल्पनाओं का स्वरुप और उनका शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में

विवेचन निम्नवत है–

कठोपनिषद में उद्धृत आत्मा की संकल्पनारू

प्रत्येक व्यक्ति में एक शाश्वत आत्मा होती है, जो उनके भौतिक शरीर और मन से स्वतंत्र होती है। कठोपनिषद में आत्मतत्त्व का स्वरूप किस प्रकार से है, यह बताया गया है कि आत्मा रहस्यमय, सर्वव्यापक है, मनुष्य के हृदय में स्थित है, अन्तर्यामी है। सभी प्राणियों के हृदय में स्थित होने के कारण यह आत्मतत्त्व तीनों कालों का स्वामी है।

कठोपनिषद में उद्धृत आत्मा का स्वरुप निम्नलिखित मंत्रों में इस प्रकार है–

"न जायते म्रियते वा विपश्चि– न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"।। (कठोपनिषद 1/2/18)

यहाँ यमराज आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हैं क्योंकि जब तक साधक अपने आप को शरीर आदि अनित्य भोगों से अलग नहीं समझ लेता तब तक उसमें अन्य वस्तुओं से वैराग्य होकर अन्तरूकरण में नित्य तत्व में लगे रहने की अभिलाषा उत्पन्न नहीं होती। जीवात्मा, चेतन ज्ञान स्वरूप है, अनित्य है, जड़ शरीर और भोग विलास से यह अलग है, अनादि और अनंत है, इसका कोई कारण और कार्य नहीं है। अतः यह जन्म–मरण से रहित है, सदा एक रस, निर्विकार है। शरीर को नष्ट करने पर भी यह नष्ट नहीं होती।

"हन्ता चेन्मन्यते हन्तुः हतश्चेन्मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायः हन्ति न हन्यते" (कठोपनिषद 1/2/19)

इस मंत्र में बताया गया है कि यदि हत्यारा सोचता है कि उसने मार डाला है और पीड़ित सोचता है कि वह मारा गया है तो दोनों ही उस आत्मतत्त्व को नहीं जानते, क्योंकि न तो किसी की हत्या की और न ही किसी के द्वारा मारा जाता है।

"अणोरणीयान्महतो महीया–नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः"।। (कठोपनिषद 1/2/20)

इस मंत्र में बताया गया है कि प्राणी के बुद्धि रूपी या हृदय रूपी गुफा में यह महान आत्मा निवास करती है जो कि सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और महान से भी महान है। यह हम सब में व्याप्त है ऐसी आत्मा को निष्काम पुरुष तथा जो शोक रहित होता है वही देखता है और इन्द्रिय, मन आदि की प्रसन्नता से अपने आत्मा की महिमा को जान पाता है और महिमा को जानकर उनका साक्षात्कार कर लेता है।

"अशरीर शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति"।।(कठोपनिषद 1/2/22)

इस मंत्र में बताया गया है कि आत्मा शरीर रहित होते हुए भी सभी शरीरों में विद्यमान है तथा जो विनाशशील और अस्थिर शरीरों में अविचल भाव से स्थित है, जो ऐसे महान, सर्वव्यापी, अविकारी, अन्तरात्मा को जान लेता है फिर ऐसा ज्ञानी पुरुष शोक से मुक्त हो जाता है।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूः स्वाम्"।। कठोपनिषद 1/2/23)

इस मंत्र में जिस आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का वर्णन किया गया है, वह न तो उनको मिलते हैं जो वेद, उपनिषद आदि शास्त्रों को पढ़–सुनकर और प्रवचन सुनने से अपने आप को आत्मज्ञानी मानते हैं और न उन तर्कशील बुद्धिमान मनुष्य को मिलते हैं जो अपनी बुद्धि और तर्क के बल से उन्हें समझने की चेष्टा करते हैं और न ही उनको प्राप्त होते हैं जो बहुत कुछ परमात्मा के विषय में सुनते हैं। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति एकमात्र परमात्मतत्त्व की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है अर्थात् जिसको यह वरता है उसको ये आत्मा अपने स्वरूप का दर्शन करा देती है।

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"।। (कठोपनिषद 2/2/9)

इस मंत्र में बताया गया है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत में एक ही अग्नि प्रत्येक वस्तु में प्रविष्ट होकर उसी का आकार और उसी वस्तु के रंग–रूप का दिखाई देती है। उसी प्रकार सभी प्राणियों के भीतर आत्मा एक है लेकिन जैसा–जैसा जिसका अन्तरूकरण और रूप–रंग, आकार दिखाई देता है वैसा–वैसा वह दिखाई पड़ने लगता है वो बाहर भी है और अंदर भी है अर्थात् जैसे अग्नि एक है लेकिन अलग–अलग रूप में दिखाई देती है उसी प्रकार यह आत्मा एक होते हुए भी अलग–अलग रूप में दिखाई पड़ती है।

"वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"।। (कठोपनिषद 2/2/10)

इस मंत्र में बताया गया है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही वायु अव्यक्त रूप से व्याप्त है तथापि अलग–अलग वस्तुओं के संयोग से उन्हीं वस्तुओं के जैसे गति और शक्ति वाला दिखाई देता है उसी प्रकार से समस्त प्राणियों के अंदर परमात्मा एक होते हुए भी अलग–अलग गति और शक्ति वाला दिखाई देता है एवं वह सबके बाहर भी अनंत रूप से स्थित है।

"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु– र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः"।।(कठोपनिषद 2/2/11)

इस मंत्र में बताया गया है कि जिस प्रकार सारे जगत को प्रकाशित करने वाले एक ही सूर्य देव है और उनके प्रकाश की सहायता से ही लोग आँखों के द्वारा गुण–दोषमय कार्य करते हैं परन्तु सूर्य को उनके आँखों के बाह्य दोषों से कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उन्हें कोई दोष नहीं लगता। उसी प्रकार सभी प्राणियों की अन्तरात्मा एक है और यह उसी की शक्ति से युक्त होकर अन्तरूकरण और इन्द्रियों द्वारा मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्म करते हैं और उसके फलस्वरूप सुख और दुख भोगते हैं परन्तु वह परमात्मा उनके दुखों से प्रभावित नहीं होते क्योंकि वह सबमें रहते हुए भी सबसे पृथक् हैं।

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा– स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्"।।(कठोपनिषद 2/2/12)

इस मंत्र में बताया गया है कि सभी प्राणियों की अन्तरात्मा एक है, सब का मूल तत्व, मूल सत्ता वही है। यह एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट हो जाता है जो धीर पुरुष इस तत्त्व को अपने अंदर ही देखते हैं उन्हीं को नित्य, शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, दूसरों को यह सुख नहीं प्राप्त होता है।

"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।

तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतं विद्याच्छुक्रममृतमिति"ध(कठोपनिषद 2/3/17)

इस मंत्र में बताया गया है कि वह अपना आत्मदेव परमपुरुष हृदय के अनुरूप अंगुष्ठमात्र वाले समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। उस शरीरस्थ परमपुरुष को अपने शरीर से और अपने आप से पृथक् करना चाहिए अर्थात् जैसे मूँज के अंदर की सींक मूँज से पृथक् और विलक्षण है वैसे ही वह शरीर और आत्मसत्ता उन दोनों से सर्वथा विलक्षण है और वही विशुद्ध अमृत है, वही विशुद्ध अमृत है।

कठोपनिषद में उद्धृत आत्मा का स्वरुप–

भगवान यमराज आत्मा की प्रकृति को उजागर करते हैं, इसके शाश्वत सार और भौतिक शरीर के बाहर स्वतंत्र अस्तित्व पर जोर देते हैं जो जन्म और मृत्यु से परे है। इस उपनिषद में उपनिषदकार ने आत्मा को अंगुष्ठमात्र कहा है अर्थात् आत्मा का स्वरूप अंगूठे जितना है। यहाँ अग्नि एवं वायु के उदाहरण द्वारा आत्मा की व्यापकता एवं विशेषता को दर्शाया गया है जिस प्रकार अग्नि एवं वायु एक होते हुए भी भिन्न–भिन्न स्वरूप में दिखाई देते हैं उसी प्रकार आत्मा भी अलग–अलग स्वरूप में होते हुए भी एक ही है। आत्मा नित्य, अनादि, अजन्मा, पुरातन है अगर कोई व्यक्ति कहता है कि मैंने उस व्यक्ति को मार दिया है और उसकी आत्मा को भी मारा है तो इसका तात्पर्य है कि वह दोनों व्यक्ति आत्मतत्त्व को पहचानते ही नहीं है क्योंकि आत्मा तो शाश्वत है। हम अपनी अविद्या और अशुद्ध बुद्धि से उसे नहीं देख सकते लेकिन एकाग्रचित्त और कुशाग्र बुद्धि से जान सकते हैं। आत्मा शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध से परे है क्योंकि यह इन्द्रियों का विषय नहीं है। आत्मा की यह आध्यात्मिक व्याख्या पहचान और आत्म–अवधारणा की स्थापना से संबंधित मनोवैज्ञानिक विचारों के अनुरूप है।

कठोपनिषद में उद्धृत आत्मा के स्वरुप की शैक्षिक विवेचना–

कठोपनिषद में आत्मज्ञान का मार्ग बताया गया है। यह मार्ग ही शाश्वत सुख की स्थिति है। इसलिए मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य ही आत्मतत्त्व को प्राप्त करना है। कठोपनिषद में वर्णित मनोवैज्ञानिक संकल्पना आत्मा का वास्तविक साक्षात्कार तभी सम्भव है जब मन और इन्द्रियों की एकाग्रता हो तथा बुद्धि विवेकशील हो। आत्मा का गहन चिंतन शिक्षा के क्षेत्र में आत्म–जागरूकता और स्थायित्व को बढ़ावा देता हैं, आत्मा की अवधारणा शिक्षा को केवल सांसारिक ज्ञान तक सीमित न रखकर आंतरिक जागरूकता की ओर अग्रसर करती है।

कठोपनिषद में उद्धृत बुद्धि की संकल्पना–

बुद्धि शब्द की उत्पत्ति संस्कृत मूल शब्द बुध (बुद्धि) से हुई है जिसका अर्थ है–जानना, समझ या ज्ञान। (कठोपनिषद,1/3/3) के अनुसार बुद्धि सारथी के रूप में कार्य करती है जहाँ वह विचार, तर्क आदि करती है

तथा शरीर में जो भी कार्य होता है उसका निर्णय करती है।

कठोपनिषद में उद्धृत बुद्धि का स्वरुप निम्नलिखित मंत्रों में इस प्रकार है जिसका प्रयोग धीर, मति, बुद्धि, विज्ञान आदि पदों के रूप में किया गया है–

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत–स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते" ।।(कठोपनिषद 1/2/2)

इस मंत्र में बताया गया है कि श्रेय अर्थात् कल्याणकारी मार्ग और प्रेय अर्थात् तत्काल सुख देने वाला मार्ग दोनों मनुष्य के सामने आते हैं और वे दोनों का विवेक पूर्वक विचार कर दोनों को अलग–अलग समझने की कोशिश करते हैं। इनमें जो श्रेष्ठ बुद्धि वाले होते हैं, वह हंस की तरह (दूध और जल को), श्रेय और प्रेय दोनों को अच्छी तरह विचार करके, दोनों को पृथक करके श्रेय का मार्ग ही वरण करते हैं और जो अल्प बुद्धि वाले हैं जिसमें विवेक का इतना सामर्थ्य नहीं है। वह योगक्षेम के लिए प्रेय को अपनाते हैं, वह ऐसा सोचते हैं कि जो कुछ भोग पदार्थ है वह सुरक्षित बने रहे और जो प्राप्त नहीं है, वह मिल जाए।

"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरारू पण्डितम्मन्यमानाः।

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः"।।(कठोपनिषद 1/2/5)

इसमें बताया गया है कि जो अज्ञानी लोग अविद्या में अर्थात् जगत के भोग साधनों में फंसे हुए हैं, जो अपने आप को बुद्धिमान और विद्वान समझते हैं, वे मूर्ख और अविवेकी लोग नाना प्रकार की योनियों, पशु, पक्षी, कीट आदि एवं जन्म–मरण के इस भवसागर में अनंत यंत्रणाओं को भोगते हैं एवं सदा दुख में रहते हैं। जैसे अन्धे मनुष्य के पीछे चलने वाले अन्धे लोग ठोकरें खाकर भटकते रहते हैं और अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाते हैं तथा गहरे गड्ढे आदि में गिरकर या चट्टान से टकराकर कष्ट भोगते हैं।

"नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा"।।(कठोपनिषद 1/2/9)

इस मंत्र में यमराज, नचिकेता से कहते हैं कि यह आत्मज्ञान का अनुभव तर्क के द्वारा नहीं हो सकता। जब कोई महापुरुष उपदेश करता है तभी इस श्रेष्ठ ज्ञान का अनुभव हो सकता है जैसे शुद्ध बुद्धि को तुमने प्राप्त कर लिया है तुम सचमुच सच्चे धैर्यवाले हो क्योंकि सुख के इतने प्रलोभनों को त्यागने के बाद भी तुम ज्ञान की प्राप्ति के लिए दृढ़ होकर खड़े हो। हे नचिकेता! तुम्हारे जैसा प्रश्न पूछने वाला शिष्य, जिज्ञासु हमें बार–बार मिले।

"यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्र्वा इव सारथेः"।। (कठोपनिषद 1/3/6)

इस मंत्र में बताया गया है कि जो बुद्धिरूपी सारथी विवेकी और मन को नियंत्रित रखने वाला या वश में किए हुए रहता है उसकी इन्द्रियाँ सन्मार्ग पर चलने के लिए मन को बाध्य किए रहती है, उसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त और निवृत्त किए जाने में इस प्रकार समर्थ होती है जैसे श्रेष्ठ अश्व विवेकयुक्त सारथी के अधीन रहकर निर्दिष्ट पथ पर चलते है।

"इन्द्रियेभ्य– परा ह्यर्था अर्थेभ्यच्श्र परं मनरू।

मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान् परः"।। (कठोपनिषद 1/3/10)

इस मंत्र में मन को इन्द्रियों से श्रेष्ठ विषयों से बलवान माना गया है। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है, बुद्धि के द्वारा विचार करके मन को राग द्वेषरहित बनाकर अपने वश में कर लेना चाहिए अर्थात् बुद्धि ही तर्क और विवेक से निर्णय लेती है, वही नियंत्रक एवं निर्णायक सत्ता है एवं बुद्धि से भी इनका स्वामी महान आत्मा या महत्त्व उत्कृष्ट है।

"एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वर्ग्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः"।। (कठोपनिषद 1/3/12)

इस मंत्र में बताया गया है कि यह सबका आत्मरूप परमपुरुष समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी माया के पर्दे में छिपा रहने के कारण सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, केवल सूक्ष्मतत्त्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जाता है।

"पराचःकामाननुयन्ति बाला–स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।

अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते"।। (कठोपनिषद 2/1/2)

इस मंत्र में बताया गया है कि मूर्ख मनुष्य ही कामनाओं से प्रेरित होकर बाह्य जगत की तरफ भागते हैं और उन्हें पाने एवं भोगने में ही जीवनपर्यंत पड़े रहते हैं। ऐसे लोग सर्वकालव्यापी मृत्यु के पाश में जकड़े रहते हैं, नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर बार–बार जन्म–मरण करते हैं परन्तु जो बुद्धिमान होते हैं, वे अमरत्व की इच्छा करके अनित्य विषयों में नित्य को जान करके फिर इस जगत में अल्पकालिक भोगों को प्राप्त करने की चाह नहीं करते और अपने आत्मस्वरूप को जानकर मुक्त हो जाते हैं।

कठोपनिषद में उद्धृत बुद्धि का स्वरुप–

इस प्रकार कठोपनिषद में बुद्धि एक केन्द्रीय तत्त्व के रूप में सामने आती है जिसे मन एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करने वाले सारथी के रूप में दर्शाया गया है जहाँ बुद्धि के बिना आत्मा अपने लक्ष्य (मोक्ष) तक नहीं पहुँच सकती तथा परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हेतु बुद्धि ही निश्चय करती है कि जीवन में कौन–सा मार्ग अपनाना है। बुद्धि न केवल एक माध्यम है बल्कि यह हमारे मन आदि अन्तरूकरण, इन्द्रियों तथा आत्मा को संयोजित कर परमतत्त्व की प्राप्ति की ओर ले जाने वाली कुंजी के रूप में कार्य करती है।

कठोपनिषद में उद्धृत बुद्धि के स्वरुप की शैक्षिक विवेचना–

शैक्षिक दृष्टि से बुद्धि की अवधारणा को केवल अध्यात्मिक या दार्शनिक नहीं बल्कि मानसिक विकास, सीखने की प्रक्रिया, तर्क और निर्णय लेने की क्षमता के रूप में देखा जाता है जो विद्यार्थियों को विषयों को सीखने और जानने में सहायता करती है तथा तथ्यों के परे जाकर सत्य की खोज करने की प्रेरणा देती है। शिक्षा का कार्य है कि वह सारथी (बुद्धि) को प्रशिक्षित करे जिससे वह आत्मा (विद्यार्थी) को उसके लक्ष्य (स्वात्मबोध या चरित्र निर्माण) तक पहुँचा सके। बुद्धि को केवल अंकों की प्राप्ति तक ही नहीं बल्कि आत्मोन्नति के साधन एवं जीवनमूल्य आधारित शिक्षा के रूप में विकसित किया जाए।

कठोपनिषद में उद्धृत मन की संकल्पना–

कठोपनिषद में मन एक महत्वपूर्ण संकल्पना है, यह संवेदनाओं का स्वामी है एवं इन्द्रियों के साथ जुड़ा हुआ है मन की उत्पत्ति मन् धातु से हुई है जिसका अर्थ है सोचना। यह वह मानसिक प्रणाली है जो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त की गई सभी सूचनाओं को समाहित करते हुए बुद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है और जहाँ ज्ञान और सोच का निर्माण होता है।

कठोपनिषद में उद्धृत मन का स्वरुप निम्नलिखित मंत्रों में इस प्रकार है–

"यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्करू सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति सँसारं चाधिगच्छति"।। (कठोपनिषद 1/3/7)

इस मंत्र में बताया गया है कि जो मनुष्य मन का संयमी नहीं, मन को वश में रखने में असमर्थ है और सदा अपवित्र आचरण करता है, वह उस श्रेष्ठ पद को प्राप्त नहीं कर सकता और अनेक जन्म–मरण युक्त संसार को प्राप्त होता है।

"यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते"।। (कठोपनिषद 1/3/8)

इस मंत्र में समनस्क शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है संयतचित्त या मन से संयमी होना, जो अपनी बुद्धि को निरन्तर विवेकशील बनाकर उसके द्वारा मन को नियंत्रित करके पवित्र आचरण करता है। वह पुनरू जन्म नहीं लेता बल्कि श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है।

"विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोंः परमं पदम्"।। (कठोपनिषद 1/3/9)

इस मंत्र में मन का अर्थ मनरूपी लगाम से है जो मनुष्य विज्ञानवान बुद्धि से सम्पन्न सारथी है और मन की लगाम अपने हाथ में पकड़ा होता है, मन को भगवान के तत्त्व चिंतन में लगा देता है तथा इन्द्रियों का संबंध भगवान से जोड़ देता है वह ऐसे संसार मार्ग के पार होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है।

"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यच्श्र परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान् परः"।। (कठोपनिषद 1/3/10)

इस मंत्र में मन को इन्द्रियों से श्रेष्ठ व विषयों से बलवान माना गया है। यदि मन की विषयों में आसक्ति न रहे तो इन्द्रियाँ और विषय ये दोनों साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है, बुद्धि के द्वारा विचार करके मन को राग द्वेषरहित बनाकर अपने वश में कर लेना चाहिए एवं बुद्धि से भी इनका स्वामी महान आत्मा या महत्व उत्कृष्ट है।

"यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि"।। (कठोपनिषद 1/3/13)

इस मंत्र में बताया गया है कि मन में वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को अन्य विषयों से हटाकर विलीन करे तथा अपने मन को ज्ञानस्वरुप बुद्धि में विलीन करें और जब मन और चिंतन पर नियंत्रण हो जाए, जब यहाँ तक दृढ़ अभ्यास हो जाए तब उस ज्ञानस्वरूप बुद्धि को आत्मा में विलीन करें अर्थात् ऐसी स्थिति में आ जाए जहाँ आत्मतत्व के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। इसके बाद अपने आप को दृढ़ निश्चय के साथ परब्रह्म परमेश्वर में विलीन करें।

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति"।। (कठोपनिषद 2/1/11)

इस मंत्र में बताया गया है कि इस जगत में कुछ भी परमात्मा से भिन्न नहीं है और यह शुद्ध मन से ही जानना चाहिए। एकमात्र परमात्मा ही परिपूर्ण है जो यहाँ अनेक भेद देखता है वह मनुष्य बार–बार जन्म–मरण को प्राप्त होता है।

"नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते"।। (कठोपनिषद 2/3/12)

इस मंत्र में बताया गया है कि न मन से न वाणी आदि कर्मेन्द्रियों से न नेत्रों आदि ज्ञानेन्द्रियों से परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु इसे प्राप्त करने की तीव्र इच्छा वालों को वह अवश्य ही मिलता है। मन से केवल उसका कितना भी मनन किया तो भी वह अधूरा ही रहेगा। इसी प्रकार इन्द्रियों से कितना भी वर्णन किया, तो भी वह अपूर्ण ही रहेगा क्योंकि वह उससे बहुत बड़ा है। मन, इंद्रियों सबका मिलाकर इकट्ठा किया जो अनुभव है वह उसका ज्ञान है, ऐसे धर्म विश्वास के साथ उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

कठोपनिषद में उद्धृत मन का स्वरुप–

मन, इन्द्रियों और विषयों से बलवान व श्रेष्ठ है। यदि मन की विषयों में आसक्ति न रहे तो इन्द्रिय और विषय ये दोनों साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते, शुद्ध मन से ही परमात्मा को जाना जा सकता है। मन को वश में करके इन्द्रियों को विपरीत मार्ग से हटाकर भगवत्प्राप्ति में लगाने की बात कही गई है।

कठोपनिषद में उद्धृत मन के स्वरुप की शैक्षिक विवेचना–

शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में मन से तात्पर्य विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति रुचि, एकाग्रता, स्थिरता आदि को बढ़ाने से है जहाँ पर वह अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण करके संयम के साथ शिक्षा के पथ पर आगे बढ़ते हैं। विद्यार्थी चंचल स्वभाव के होते है जिससे उनका मन किसी एक विषय पर केन्द्रित नहीं हो पाता है क्योंकि वह एक विषय से दूसरे विषय की ओर अलग–अलग दिशाओं में भटकता रहता है इसलिए एक विषय पर बच्चों का मन केन्द्रित / एकाग्र करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी धारणा, ध्यान शक्ति को बढ़ाया जाए, जिसके लिए योग, मनन और अभ्यास की आवश्यकता है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार मन उत्तम, प्रसन्न, स्वाधीन और संयमशील होना चाहिए तथा विषयों को अपने अधीन रखना चाहिए, सब इन्द्रियों से जो अनुभव प्राप्त होते हैं उनका संग्रह मन करता है (सातवलेकर, 1953)। वामन शिवराम आप्टे की संस्कृत–हिंदी–शब्दकोश में भी मन का अर्थ मन को स्थिर करना बताया गया है(आप्टे, 2012)।

कठोपनिषद में उद्धृत इन्द्रियों की संकल्पना–

इन्द्रियों का अर्थ है पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ यानी जिनके द्वारा बाह्य विषयों का अनुभव होता है और पाँच कर्मेन्द्रियाँ यानी जिनके द्वारा कर्म किया जाता है अर्थात् ये हमें भौतिक जगत का अनुभव कराती हैं।

कठोपनिषद में उद्धृत इन्द्रियों का स्वरुप निम्नलिखित मंत्रों में इस प्रकार है–

"श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेंद्रियाणाम् जरयन्ति तेजः।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते"।। (कठोपनिषद 1/1/26)

इस मंत्र में नचिकेता, यम को उत्तर देता है–हे यम! आपने जिन भोगों का वर्णन किया है वह सभी कुछ ही क्षण के है। मनुष्य के इन्द्रियों का तेज इन भोग विलासों से नष्ट हो जाता है, अतरू इन्द्रियों से प्राप्त सुख स्थायी नहीं है तथा जितना भी दीर्घजीवन मिला हो वह अल्प ही प्रतीत होता है। ये अप्सराए नाच, गायन आदि इन्द्रिय–सुख आप अपने ही पास रखो, मुझे यह नहीं चाहिए।

"इन्द्रियाणि हयानहुर्विषया स्तेषु गोचरान।

आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषीण"द (कठोपनिषद 1/3/4)

इस मंत्र में ज्ञानीजनों ने कहा है कि इन्द्रियाँ घोड़ों के समान हैं क्योंकि जिस प्रकार घोड़े रथ को चलाते हैं उसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियाँ मनुष्य को विषयों की ओर ले जाती हैं। शब्द, रस, रूप, गंध और स्पर्श ये विषय इन्द्रियों के मार्ग हैं जिस पर चलकर मनुष्य को विषयों का अनुभव होता है। आत्मा शरीर, मन और इन्द्रिय से युक्त होकर किसी का भोग कर सकती अर्थात् आत्मा, मन से युक्त होकर नेत्रों द्वारा रूप का भोग करती है, कान से संबंध करके शब्द का भोग करती है। इसी तरह अन्य इन्द्रियों के द्वारा अन्य विषयों का भोग करती है। इस तरह जीवात्मा मन और इन्द्रियों से युक्त होकर भोक्ता कहलाती है।

"पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू– स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष–दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्"।। (कठोपनिषद 2/1/1)

इस मंत्र में बताया गया है कि स्वयम्भू परमेश्वर ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है, इन्द्रियों की रचना शब्द, स्पर्श, रस, गंध, रूप का यथार्थ ज्ञान कराने के लिए हुई है इसलिए मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा विशुद्ध विषयों का ग्रहण, बाह्य विश्व का दर्शन तो कर सकता है परन्तु अपनी अन्तरात्मा का दर्शन नहीं कर पाता। कोई बुद्धिमान मनुष्य ही अमरत्व प्राप्त करने की इच्छा से चक्षु आदि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है और उन्हें भगवत संबंधी विषयों में लगाकर अपनी अन्तरात्मा को देखता है।

"इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।

पृथगुत्पद्यमनानां मत्वा धीरो न शोचति"।। (कठोपनिषद 2/3/6)

इस मंत्र में बताया गया है कि प्रत्येक इन्द्रियों का अनुभवरूप पृथक्–पृथक् कार्य के लिए भिन्न–भिन्न रूपों में उत्पन्न इन्द्रियों के पृथक्–पृथक् भाव है, जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों का उदय और सुषुप्तिकाल में उनका अस्त हो जाना, इन पर विचार करने से विज्ञानवान मनुष्य इस रहस्य को समझ लेता है और साधक किसी प्रकार का शोक नहीं करता तथा दुख और शोक से दूर हो जाता है।

"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ"।। (कठोपनिषद 2/3/11)

इस मंत्र में बताया गया है कि इन्द्रियाँ, अन्तरूकरण आदि की स्थिर धारणा को ही योग कहते हैं जहाँ अंतः और बाह्य इन्द्रिय शान्त हो जाती है। योग की साधना करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और साधक प्रमादरहित हो जाता है परन्तु यह योग उदय होता है और अस्त भी हो जाता है। अतः साधक को इस योग का अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए।

कठोपनिषद में उद्धृत इन्द्रियों का स्वरुप–

कठोपनिषद में इन्द्रियों को रथ–रथी के रूपक में रथ को खींचने वाले अश्व रूप कहा गया है। जिस प्रकार रथ को अश्व खींचते है उसी प्रकार शरीर को इन्द्रियों के माध्यम से चलाया जाता है। शरीर में ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही हम देख, सुन आदि पाते है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध यही इनके मार्ग है जिनपर ये इन्द्रिय रुपी अश्व दौड़ते है। इन्द्रियों के द्वारा ही सारे जगत के अनुभवों को एकत्रित किया जाता है। जो अपने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता उसकी इन्द्रियाँ दुष्ट घोड़ों की भाँति वश में न रहने वाली होती है।

कठोपनिषद में उद्धृत इन्द्रियों के स्वरुप की शैक्षिक विवेचना–

इन्द्रियों के अनुभवों के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे व्यक्ति अपना कार्य करने में सक्षम होता है यदि इन्द्रियों का सही ढंग से उपयोग न किया जाए तो वह हमें गलत मार्ग पर ले जाती है। विद्यार्थी को अपनी इन्द्रियों पर संयम करना आना चाहिए क्योंकि बिना नियंत्रण के इन्द्रियाँ अपना प्रभाव सही दिशा में नहीं डालती है वह दुष्ट घोड़ों की तरह हो जाती है। इन्द्रियों को वश में करने से मनुष्य ज्ञान और विद्या के मार्ग पर चल सकता है। स्थिर एकाग्रता और ध्यान के द्वारा इन्द्रियों को संयमित किया जा सकता है जिससे विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते है।

निष्कर्ष–

कठोपनिषद में मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। कठोपनिषद में आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, चेतना, स्वप्न आदि संकल्पनाओं में छिपे गूढ़ ज्ञान का विश्लेषण समकालीन मनोविज्ञान में अभी भी प्रासंगिक है। कठोपनिषद में एक रूपक के माध्यम से आत्मा, मन, बुद्धि, शरीर और इन्द्रियों के विविध पहलुओं के अंतर संबंधों का बोधगम्य उदाहरण दिया गया है जिसमें मनुष्य की मनोशारीरिक प्रणाली को रथप्रणाली के रूप में दिखाया गया है जहाँ शरीर रूपी जीवात्मा रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं और मन लगाम है (कठोपनिषद 1/3/3)। आत्मा की संकल्पना

आत्म–जागरूकता के महत्व पर प्रकाश डालती हैं, जो आत्म–अवधारणा और मानव विकास के समकालीन विचारों के साथ तारतम्यता रखती है। यह उपनिषद आत्मा तक पहुँचने, मोक्ष प्राप्त करने और पुनर्जन्म के दुखों से मुक्ति पाने का मार्ग भी दिखाता है। कठोपनिषद में बुद्धि को जीवनरुपी रथ के सारथी के रूप में उजागर किया गया है जो अपने विवेक शक्ति, तर्क करने की क्षमता, विचार, निर्णय–शक्ति से सही या गलत, स्थायी या अस्थायी, शुभ या अशुभ मार्ग को तय करने का निश्चय करती है जिससे यह जीवात्मारुपी स्वामी को उसके चरम लक्ष्य तक पहुँचा सके। यदि बुद्धि बलवान और प्रशिक्षित है तो आत्मा को अंतिम सत्य की ओर या परब्रह्म का अनुभव कराने की ओर ले जाती है। यदि बुद्धि अविवेकी और दुर्बल है तो मनुष्य का जीवन दिशाहीन और अंधकारमय हो जाता है। मानव मन घोड़े की तरह है यह कुछ ही सेकेंड में एक विषय से दूसरे विषय की ओर बढ़ जाता है इसलिए एकाग्रता आसान नहीं है। ''मन, शरीर की गतिविधियों को नियंत्रित करता है और व्यक्ति को विविध कार्यों में संलग्न करता है जैसा कि पूर्वोक्त चर्चा में शरीर की तुलना रथ से तथा बुद्धि की तुलना सारथी से की गयी है और यह समझाया गया है कि मन को बनाये रखने वाली इन्द्रियों को नियंत्रित करके, व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँच सकता है। सबसे महत्वपूर्ण विषय यह है कि ज्ञान या आत्मतत्त्व के साधक का मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण अवश्य ही होना चाहिए। वामन शिवराम आप्टे की संस्कृत–हिंदी–शब्दकोश में भी मन का अर्थ मन को स्थिर करना बताया गया है।

कठोपनिषद एक ऐसा ग्रन्थ है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास को प्रभावित करता है। इसमें वर्णित मनोवैज्ञानिक संकल्पनाएँ मन, बुद्धि, आत्मा, इन्द्रियाँ आदि शिक्षा के लिए एक मजबूत आधार प्रस्तुत करती हैं। कठोपनिषद के सिद्धांतों का प्रयोग विद्यार्थियों में आत्म–चिंतन, आत्म–अवलोकन को विकसित करने में करना चाहिए। जिससे विद्यार्थी अपनी आंतरिक क्षमताओं को खोजने में सक्षम हो सके। कठोपनिषद में इन्द्रियाँ ज्ञान की प्राप्ति के स्त्रोत है जिसका उपयोग आत्म–साक्षात्कार के लिए किया जा सकता है, जिन्हें नियंत्रित करना आवश्यक है, इनका अभ्यास शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यक है। विद्यार्थी का अपनी इन्द्रियों पर संयम हो, इसके लिए इन्द्रियों को वश में करना आवश्यक है, क्योंकि यह मनुष्य को सांसारिक सुखों की ओर ले जाती हैं, जो क्षणिक और दुखद होते हैं। क्योंकि बिना नियंत्रण के इन्द्रियाँ अपना प्रभाव सही दिशा में नहीं डालती है वह दुष्ट घोड़ों की तरह हो जाती हैं। कठोपनिषद मन, शरीर और आत्मा के बीच सामंजस्य और इस संतुलन को प्राप्त करने के तरीकों की भी वकालत करता है। यह वह ग्रन्थ है जो मनुष्य को बाहरी दुनिया के सुखों को देखने के बजाय अपने भीतर देखने की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह ब्रह्माण्ड और व्यक्ति के बीच संबंध को भी समझाता है। इस प्रकार कठोपनिषद ज्ञान का खजाना है, जिसे आत्म–साक्षात्कार और आत्म–उत्कर्ष को समझने और मनुष्य की वास्तविक क्षमता को प्राप्त करने के लिए अक्सर मंथन करके ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

सन्दर्भ सूची

1. ईशादि नौ उपनिषद् (सम्वत् 2076). गीता प्रेस. गोरखपुर।
2. सातवलेकर, एस. डी. (1953), कठोपनिषद्, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
3. आप्टे, वी. एस. (संस्करण 2012), संस्कृत–हिंदी कोश. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङकरभाष्यार्थ). (सम्वत् 2078). गीता प्रेस. गोरखपुर।

Cite this Article

'कल्पना पटेल', "वृद्ध महिलाओं के जीवन में पीढ़ीगत संबंध और समायोजन का अध्ययन", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:3, Issue:5, May 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."